विद्यावाचस्पतिः डॉ0 सुन्दरनारायणझाः
सहायक-आचार्यः,वेदविभागः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्,
बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली-16

वेद में सामाजिक समरसता

वेद पदार्थ में पुरुषार्थ चतुष्टय-

हम जानते हैं कि समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत वेद है | पाणिनीय व्याकरणानुसार विद्-धातु से वेद शब्द निष्पन्न होता है | सिद्धान्तकौमुदी के चुरादिप्रकरण में भट्टोजिदीक्षित ने विद्-धातु का प्रयोग **विद्-सत्तायाम्, विद्-ज्ञाने, विद्-विचारणेएवं विद्-लृ-लाभे**इन चार अर्थों में किया है | यथा-

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे |
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ||

लौकिक दृष्टि से देखने पर इन चारों अर्थों द्वारा पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की सिद्धि होती है |अत एव ऋक्प्रातिशाख्य में- **विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैस्ते वेदाः**यह कहा गया है |

वस्तुतः कोई भी जीव जब शरीर ग्रहण कर माता के उदर से इस लोक में आता है तब यहाँ उसकी सत्ता मानी जाती है | अर्थात् जब किसी की सत्ता यहाँ रहती है तब उसे **–अयं बालकः अस्ति** ऐसा कहते हैं | यद्यपि सत्ता दो प्रकार की कही गई है **अस्तिसिद्ध एवं भातिसिद्ध |** जो प्रत्यक्ष हो उसे अस्तिसिद्ध तथा जो अप्रत्यक्ष हो उसे भातिसिद्ध कहते हैं | यह सत्ता ही धर्म का वाचक है | जिसे हम धारण करते हैं, उसे **धर्म** कहते हैं | यथा हमने मानवशरीर को धारण किया है, तो मानवीयता की रक्षा हेतु मानव बने रहना ही हमारा धर्म है | धर्म से ज्ञान का उदय होता है | शरीर ग्रहण करने के पश्चात् ज्ञानार्जन करते हैं, यही लोकसिद्ध सिद्धान्त है | अत एव

बालक **ज्ञान** (विद्या) की प्राप्ति हेतु गुरु के शरण में जाता है | ज्ञानार्जन के साथ-साथ प्रयोजन के अनुसार वित्त, प्रजा, पशु आदिविविध **अर्थों** को प्राप्त करता है | अर्थोपार्जन के उपरान्त अनेकविध ऐहिक एवं पारलौकिक सुख प्राप्ति हेतु विचार करता है | अनेकविध सुख की **कामना** ही वेद शब्द के विचारार्थ का वाचक है | जबतक कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तबतक व्यक्ति इधर उधर भटकता रहता है | कामना के अनुरूप समस्त भोगों को भोगकर जब चित्त में शान्ति का उदय होता है, तब व्यक्ति एकदम स्थिर हो जाता है | इसी अवस्था को **मोक्ष** कहकर ऋषियों ने वेद शब्द के चतुर्थ अर्थ लाभ को समझाने का प्रयत्न किया है, ऐसा मेरा मानना है |

स्वरूपतः वेद तीन हैं- ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद | इन तीनों वेदों को विद्या भी कहते हैं | इस प्रकार ऋग्विद्या, यजुर्विद्या तथा सामविद्या ये तीन विद्यायें इस लोक में प्रशस्त हैं | इन्हीं तीनों विद्याओं के माध्यम से परमात्मा सृष्टिसञ्चालन करते हैं | जैसा कि कहा गया है-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुरन्या गतिर्याजुषी हैव शश्वत् |
सर्वं तेजः सामरूपं ह शश्वत् सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् ||

अर्थात् ऋग्वेद से समस्त मूर्ति (आकृति), यजुर्वेद से समस्त प्रकार की गति तथा सामवेद से समस्त तेजका निर्माण हुआ, और यह सब ब्रह्म के द्वारा ही सृजित हुआ | इस तथ्य को यजुर्वेद के छत्तीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में इस प्रकार कहा गया है- **ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः सामप्राणं प्रपद्ये** इति | अर्थात् ऋग्विद्या से वाक् तत्त्व, यजुर्विद्या से मनस्तत्त्व तथा सामविद्या से प्राणतत्त्व के सर्जन की बात कही गई है |

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि समस्त आकृति, गति एवं तेज तथा वाक्, प्राण एवं मन की उत्पत्ति इन्हीं तीनों विद्याओं से हुई है |

वेदों में विज्ञान-

विज्ञान शब्द का अर्थ विशिष्ट ज्ञान होता है | तात्पर्य यह है कि किसी भी वस्तु या पदार्थ के विषय में विशिष्ट जानकारी प्राप्त करना ही विज्ञान कहलाता है | अमरकोशकार ने कहा है- **मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः** अर्थात् मोक्ष प्राप्ति हेतु बुद्धि का व्यापार किया जाना

ज्ञान कहलाता है तथा शिल्पादि शास्त्रों में आविष्कारजन्य प्रयुक्त बुद्धि विज्ञान शब्द द्वारा जाना जाता है | गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था- **ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः**इति। यज्ञादियों को शिल्पशास्त्रान्तर्गत ही स्वीकार किया जाता है| क्योंकि वहां वेदी निर्माण आदि कार्य शिल्पानुगत ही होता है । अतः याज्ञिकप्रक्रिया भी पूर्णतः वैज्ञानिक होती है | वहां भी यजमान के असद्वृत्ति का निरसन तथा सद्वृत्ति का उदय किया जाता है, जिससे वह स्वर्गरूपी फल प्राप्त करता है। इसी कारण से- **आत्मसंस्कृतिर्वै शिल्पानि आत्मानमेवास्य तत्संस्कुर्वन्ति**तथा- **आत्मा वै यज्ञः**इत्यादि उद्धरण श्रौतशास्त्रों में दिया गया है । आत्मसंस्काररूप कर्म अवैज्ञानिक नहीं हो सकता । इसलिये तैत्तिरीयोपनिषद् में **विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च** कहकर यज्ञ को विज्ञानरूप कहा गया है | आत्मा का विज्ञानरूपत्वभी स्वयं सिद्धही है। जैसा कि कहा भी गया है- **स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः.....**इत्यादि | यह आत्मा ब्रह्म है, और ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है | उपनिषदों में **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** कहा गया है |

कहने का तात्पर्य यह है कि यह समस्त चराचरात्मक जगत् ब्रह्म का विस्तार ब्रह्मरूप ही है | ब्रह्म के दो रूप शब्दब्रह्मात्मक तथा परब्रहमात्मक बताये गये हैं, यथा-

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत् |
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ||

शब्दब्रह्मात्मक ऋगादि वेदों में जो निष्णात है वही परम ब्रह्म को जानने में समर्थ हो सकता है | इसी हेतु से यह कहा गया कि-

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः |
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ||

अर्थात् युगों की समाप्ति के समय समस्त ज्ञान विज्ञान परमात्मा में अन्तर्लीन हो जाता है| जब पुनः सृष्टि होती है तब ऋषि महर्षि तपस्या द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर अन्तर्हित वेदों को प्राप्त करते हैं, तथा अपने शिष्यों को उसका उपदेश करते हैं | इस प्रकार ऋषि भी दो प्रकार के कहे गये हैं पुराने तथा नये | जैसा कि ऋग्वेद के प्रथममण्डल के प्रथम सूक्त में कहा गया है-

अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत | स देवां एह वक्षति ||

अर्थात् अग्निदेवता पुराने तथा नये ऋषियों द्वारा स्तुत्य है | इस प्रकार ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा स्वयं वेदों का ज्ञान प्राप्त करने वाले ऋषि पुरातन ऋषि कहलाते हैं, तथा पुराने ऋषियों

द्वारा उपदेश के माध्यम से वेदों का ज्ञान प्राप्त करने वालेनये ऋषि कहलाते हैं | इस प्रकार क्रमशः ऋषियों के भी सात प्रकार हो जाते हैं | यथा-

सप्त ब्रह्मर्षि-देवर्षि- महर्षि-परमर्षयः |
काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः ||

अर्थात् वेद ब्रह्म है, उसका साक्षात्कार करने वाले ब्रह्मर्षि पद से विभूषित हुए हैं | ये ऋषि समस्त ऋषियों में श्रेष्ठ कहे गये हैं | अन्य ऋषि क्रमशः अवर कोटि के हैं |

हम जानते हैं कि **ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः** इस व्युत्पत्ति द्वारा वेदों का साक्षात्कार करने वाले ऋषि ब्राह्मण कहलाते हैं | ऋग्वेद में भी **ऋषिर्विप्रः काव्येन** यह कहा गया है | अर्थात् ऋषि अपने काव्य के कारण विप्र कहलाये | वह काव्य कैसा तो अथर्ववेद में कहा गया है **–पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति |** अर्थात् विप्र देवता का काव्य देखो कैसा है जो न कभी पुराना होता है और न ही नष्ट होता है | तात्पर्य यह है कि वेदरूपी यह काव्य युग के अन्त होने पर ब्रह्म में अन्तर्लीन हो जाता है तथा युग के आदि में पुनः उसी रूप में ऋषियों के हृदय में संचरण करने लगता है |इस प्रकार अनेकविध वैज्ञानिकतथ्यों से ओतप्रोत वेद आधिदैविक आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक विज्ञान का प्रकाशन करने वाली विद्या है, जिसका अध्ययन अध्यापन समस्त विश्व में हो इसकी आवश्यकता है |

वेदों के अध्ययन के आधार पर प्राचीनकाल में ऋषियों ने जो ज्ञान विज्ञान प्राप्त किया वह आज इतिहास के गर्भ में है , किन्तु आधुनिक युग में भी महाराष्ट्र के शिवकर बापूजी तलपडे ने ई. १८८२ में एक प्रयोगशाला स्थापित किया और ऋग्वेद के मंत्रों के आधार पर आधुनिक काल का पहला विमान का निर्माण किया ।इसका परीक्षण ई. १८९५ में मुंबई के चौपाटी समुद्र तट पर कियागया था । इस कार्यक्रम में प्रत्यक्षदर्शियों में सयाजीराव गायकवाड़, लालजी नारायण, महादेव गोविन्द रानाडे आदि प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे । शिवकर विमान को जनोपयोगी बनाना चाहते थे लेकिन उन्हें अंग्रेज सरकार से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिली थी ।शिवकर ने ई. १९१६ में पं. सुब्राय शास्त्री से महर्षि भरद्वाज की यन्त्रसर्वस्व - वैमानिक प्रकरण ग्रन्थ का अध्ययन कर 'मरुत्सखा' विमान का निर्माण आरंभ किया । किन्तु लम्बी समय से चलरही अस्वस्थता के कारण दि. १७ सितम्बर १९१७ को उनका स्वर्गवास हुआ एवं 'मरुत्सखा' विमान निर्माण का कार्य अधूरा रह गया |

इस संदर्भ में एक अत्यन्त रोचक और महत्त्वपूर्ण सूचना अन्तर्जाल के माध्यम से प्राप्त हुई जो श्रीमान् राजीव दीक्षितजी द्वारा विकिपीडिया पर प्रस्तुत है-

तलपडे जी का यह कहना था की मैं ऐसे कई विमान बना सकता हूँ, मुझे पैसे की कुछ जरुरत है, आर्थिक रूप से मेरी अच्छी स्थिति नही है| तो लोगों ने इतना पैसा इकठ्ठा करने की घोषनायें की के आगे उनको कोई जरुरत नहीं थी लेकिन तभी उनके साथ एक धोखा हुआ| अंग्रेजों की एक कंपनी थी उसका नाम था 'Ralli Brothers' वो आयी तलपडे जी के पास और तलपडे जी को कहा यह जो विमान आपने बनाया है इसका ड्राइंग हमें दे दीजिये| तलपडे जी ने कहा कि उसका कारण बताइए, तो उन्होंने कहा कि हम आपकी मदद करना चाहते हैं, आपने यह जो आविष्कार किया है इसको सारी दुनिया के सामने लाना चाहते हैं, आपके पास पैसे की बहुत कमी है, हमारी कंपनी काफी पैसा इस काम में लगा सकती है, लिहाजा हमारे साथ आप समझौता कर लीजिये, और इस विमान की डिजाईन दे दीजिये|तलपडे जी भोले भाले सीधे सादे आदमी थे तो वो मान गए और कंपनी के साथ उन्होंने एक समझौता कर लिया| उस समझौते मेंRalli Brothers जो कंपनी थी उसने विमान का जो मोडेल था उनसे ले लिया, ड्राइंग ले ली और डिजाईन ले ली; और उसको ले कर यह कंपनी लन्दन चली गयी और लन्दन जाने के बाद उस समझौते को वो कंपनी भूल गयी| और वो ही ड्राइंग और वो डिजाईन फिर अमेरिका पहुँच गयी| फिर अमेरिका मेंWrite Brothers के हाथ में आ गयी फिर Write Brothers ने वो विमान बनाके अपने नाम से सारी दुनिया में रजिस्टर करा लिया|

इतना ही नहीं यह तो मात्र एक उदाहरण है, इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण उपलब्ध हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेदों में जिन वैज्ञानिक सूत्रों का विवेचन हुआ है उनका विस्तृत विवेचन ऋषियों ने विविध शास्त्रों में किया था उन शास्त्रों को जला दिया गया, चुरा लिया गया, नष्ट कर दिया गया ताकि हम भारतीय अपने मौलिक ज्ञान से वञ्चित हो जांये | उन्हीं शास्त्रों का आधार लेकर पाश्चात्यों ने अपनी प्रौद्योगिकी को प्रोन्नत किया यह कहने में भी कोई दिक्कत नहीं है | पैथागोरस का गणितीय सिद्धान्त, न्यूटन का गति एवं आकर्षण सिद्धान्त आदि अनेकविध पाश्चात्य मनीषियों के सिद्धान्त भारतीय वैदिक सिद्धान्त पर ही आधारित है | चूंकि वेद ही समस्त धर्म का मूल है | मनु ने कहा भी है-

वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् |

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ||

आज समस्त संसार इस बात को स्वीकार करता है कि वेद ज्ञान विज्ञान का भण्डार है | इसलिये दुनियां का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ वेद ही है |

वेदों में सामाजिक समरसता

वेद किसी एक व्यक्ति, वर्ग, समुदाय, पन्थ, देश आदि के लिये नहीं अपितु समस्त संसार के कल्याण के लिये मार्ग प्रशस्त करता है | वेदों का उद्घोष है- **यत्र विश्वम् भवत्येकनीडम् |** अर्थात् वेद एक ऐसा घोसला है जिसमें संपूर्ण विश्व एकजुटता से रहता है | इसी दृष्टिकोण से ऋग्वेद में **विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्** यह कहा गया है | यहां **भारतं जनम्** इस पद से भारतदेश विशेष में रहनेवाले लोगों का ही बोध नहीं होता अपितु **भा** नाम ज्ञानप्रकाश का है उसमें **रत** तल्लीन रहने वाले संसार के समस्त जीवों का बोध होता है |

वस्तुतः हमें शब्दों के संकुचित अर्थों से अवश्य बचना चाहिये | वेदों में अधिकाधिक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है | उन शब्दों का बहुत व्यापक अर्थ प्रतिपादित है | एकपक्षीय अर्थ करने से वेदों की व्यापकता में ह्रास उत्पन्न होता है | इसी हेतु से नीतिविदों ने-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् |
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ||

यह उपदेश दिया है | श्रुति वाक्यों में इस प्रकार के संकुचित भावों का कोई स्थान नहीं है | **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माममृतं गमय** इत्यादि वाक्यों का जो भी जीव पाठ करेगा वह उस फल को प्राप्त करने का अधिकारी होगा | इससे यह एकदम स्पष्ट हो जाता है कि वेद का संबन्ध समस्त संसार के सभी जीवों से है |

यजुर्वेद के एक मन्त्र में अग्नि को गरुड पक्षी के रूप में स्तुत किया है –**सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत**[1] **|** अर्थात् हे अग्नि तुम सुन्दर पंखवाले गरुड पक्षी हो तुम द्युलोक में जाओ और

[1]शु०य०सं०-१४/४

स्वर्ग में ठहरो | तथा **श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान्गच्छ|**[2]अर्थात् हे अग्नि तुम बाज पक्षी बनकर यजमान के घर जाओ | इत्यादि वेदवाक्यों में पशु पक्षियों को देवताओं के विशेषणरूप में प्रस्तुत किया गया है |विष्णुसूक्त में विष्णु कोसिंह के समान घोर गर्जना करणे वाला तथा पर्वतों में रहने वाला कहा गया है | यथा- **प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः |**[3] एवंविध अनेक मन्त्रों में देवताओं की तुलना पशु पक्षियों से की गयी है |

इसी प्रकार मानव पशु पक्षी कृमि कीट पतङ्ग वृक्ष वनस्पति लता गुल्मौषध्यन्नादि सब में वह ब्रह्म व्याप्त है, तथा सब ब्रह्ममय है | अत एव उपनिषदों में **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** यह उद्घोष किया गया है | जिससे यह स्पष्ट होता है कि परमात्मा संसार के प्रत्येक सूक्ष्म एवं स्थूल तत्त्वों में व्याप्त है | जब वह सब जगह व्याप्त है ही तो पुनः उच्च नीच का भेद कहां रह जाता है | जरा सोचिये, बिष्ठा में हजारों लाखों की संख्या में जीव रहता है | उस जीव में भी वही परमात्मा प्रविष्ट है | तैत्तिरीयोपनिषद् में **तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्** कहकर यह बताया गया है कि ब्रह्म **एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय** यह सोचकर कि मैं एक हूं अनेक हो जाऊं, सृष्टियज्ञ करता है | यज्ञ द्वारा जीव शरीर का निर्माण होने पर उसमें स्वयं प्रविष्ट होकर उस शरीर को पूर्ण करता है | ब्रह्म जीव शरीर में प्रविष्ट होने के समय यह नहीं सोचता कि इस जीव का शरीर कैसा है? इसका खान पान क्या है? इसका रहन सहन कैसा है? इत्यादि | अर्थात् उच्च नीच का भेद किये बिना ही समस्त जीव शरीर में प्रविष्ट हो जाता है |फलतः समस्त जीव उसी पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण है, यह हम सब जानते हैं | अतः उसकी दृष्टि में उच्च नीच का भेद है ही नहीं, इसमें कोई संशय नहीं है |

देखिये, सूर्य को हमलोग भगवान् कहते हैं | भगवान का स्वरूप समदर्शी होता है, उसका प्रकाश याज्ञिकों के घर पर जैसा पडता है वैसा ही चाण्डाल के घर पर भी | सूर्य के मन में कोई भेद भाव नहीं है | उसी तरह वेद भी भगवान् हैं, वेद में भी इस प्रकार का कोई भेदभाव कहीं किसी तरह दिखाई नहीं देता | वेद में जहां कहीं भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इत्यादि जाति संबन्धी शब्द का प्रयोग हुआ है वह अत्यन्त पारिभाषिक है | पारिभाषिक शब्दों का सामान्य अर्थ लेने से समस्या तो होगी ही | जैसे वेद के यज्ञ प्रसंग में श्रुति वाक्य आता है **व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा यजेत** अर्थात् व्रीहि से याग करें अथवा यव से याग करें | उसी स्थल में यह कहा गया है कि **अजैर्यष्टव्यम्** अर्थात अज से याग करें | यहां व्रीहि एवं यव पद का अर्थ तो अन्न सभी समझते

[2]शु०य०सं०-४/३४

[3]ऋ०सं०-१/१५४/२

हैं, किन्तु अज के अर्थ में भ्रम उत्पन्न होता है | कुछ याज्ञिक लोगों ने अज का अर्थ बकडा समझा और उसका यजन आरम्भ कर दिया | आज भी यत्र तत्र इस प्रकार के यज्ञ होते दृश्य हैं | इस यज्ञ का विरोध होने पर भी यह किसी प्रकार रुकने का नाम नहीं ले रहा है | चूंकि बहुत दीर्घ काल से होता आ रहा है | इस यज्ञ को कई समाज में मान्यता मिली हुई है | **अकरणे प्रत्यवायः** उन लोगों की यह धारणा है कि यदि हम इस प्रकार छाग वलिदान कर यज्ञ नहीं करेंगे तो हमारे ईष्ट रुष्ट हो जायेंगे | और हमारे समाज का बहुत बडा अहित होगा | देवी देवताओं के विषय में सामान्य मनुष्य को उतना ज्ञान हो नहीं पाता इसलिये, डटकर कोई सामने नहीं आना चाहता है |

इतिहास साक्षी है कि साकेतनाथ का साक्षात् अवतार भगवान् रामानन्दाचार्य, संत कबीर, भगवान् बुद्ध, महावीर, दयानन्द आदि अनेक समाज सुधारकों ने इस दिशा में प्रयत्न किया , परन्तु यह समाज अज्ञानता को छोड नहीं सका | अतः आज आवश्यकता है हमें उन रूढिवादी विचारधाराओं से ऊपर उठकर कुछ सोचने का तथा कुछ जानने का | इस संदर्भ मे मैं इतना कहना चाहता हूं कि मानवीय भूल को वेदों पर थोंप देना न्यायोचित नहीं है |

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः | ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ||

उक्त मन्त्र में ब्रह्म शरीरस्थित अङ्गों के गुण एवं कर्मों का वर्णन किया गया है | **ब्रह्म वै वेदः** इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि वेद ब्रह्म है | वेदों में शब्द हैं तथा शब्दों का उच्चारण मुख से ही किया जाता है | इस प्रकार वेदमन्त्रों का उच्चारण जिस अङ्ग का गुण या कर्म है उसे ब्राह्मण कहा गया है | इसलिये **ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्** यह मन्त्रवाक्य प्रवृत्त हुआ | राजृ दीप्तौ धातु से राजा शब्द की निष्पत्ति होती है | राजकार्य हाथ (बाहु) के बिना संभव नहीं, अतः किसी वस्तु का ग्रहण या संप्रदान संरक्षण आदि जिस अङ्ग का गुण या कर्म है उसे राजन्य कहा गया है | तदर्थ **बाहू राजन्यः कृतः** यह मन्त्रवाक्य प्रवृत्त हुआ | उरु विस्तीर्णे धातु से निष्पन्न ऊरु शब्द विकास का बोधक है | अतः विश्व का विकास अर्थात् प्रजाओं की उत्पत्ति जिस अङ्ग से संभव हुआ, ऐसा कर्म और गुण वाला अङ्ग ऊरु कहलाता है और वही विश यानी वैश्य का वाचक है |विश् का अर्थ वैदिक परिभाषा में प्रजा, मनुष्य, राष्ट्र इत्यादि होता है | इसलिये **ऊरूतदस्य यद्वैश्यः** यह मन्त्रवाक्य प्रवृत्त हुआ | पद् गतौ धातु से पाद शब्द निष्पन्न होता है | अर्थात् जिस अङ्ग की सहायता से आवागमन संभव है उसे पाद कहा गया | हम सबलोग यह जानते हैं कि कहीं अन्यत्र से घूमफिरकर आने के बाद पादप्रक्षालन करने से पवित्रता होती है | चूंकि चलने पर पैर में गन्दगी का होना स्वाभाविक है, अतः उसे जल से द्रवित कर (भिगोकर) शुद्ध किया जाता

है | अतः शुच् दीप्तौ धातु में रक् प्रत्यय करने से शूद्र शब्द बनता है जिसका अर्थ पवित्रीकरण का आरम्भस्थल मानना चाहिये | इस प्रकार शू= आशु (शीघ्र) द्र= द्रवित होने (गमनार्थ प्रवृत्त होने या गीला होने) का गुण वा कर्म जिसका है वह शूद्र कहलाता है | तात्पर्य यह है कि पैर जल से आर्द्र होने पर पवित्र होता है, अन्यथा अपवित्र है | इसलिये शूद्र शब्द अपवित्रता का वाचक बन गया | धर्मशास्त्रों में कहा गया है- **जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विज उच्यते |** अर्थात् जन्म से सभी मनुष्य असंस्कृत होने के कारण शूद्र है, जब उसका संस्कार किया जाता है तब संस्काररूपी द्वितीय जन्म से वह द्विजत्व को प्राप्त करता है | इसलिये **पद्भ्यां शूद्रो अजायत** यह मन्त्र वाक्य प्रवृत्त हुआ |

इस प्रकार प्रस्तुत मन्त्र द्वारा ब्रह्म शरीरावयव के स्वरूप एवं कर्म का व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है |गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः |**अर्था गुण एवं कर्म विभाग के अनुसार चारों वर्णों का सृजन मेरे द्वारा किया गया | यहां गुण एवं कर्म को अच्छी प्रकार से समझने की जरूरत है | ब्राह्मण वंश में उत्पन्न लङ्काधिपति रावण सर्वशास्त्रनिष्णात होते हुए भी राक्षसी कर्म में प्रवृत्त होने के कारण लोक में अपूज्य हैं | क्षत्रिय वंश में उत्पन्न मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम श्रेष्ठ कर्म के कारण सर्वत्र पूज्य हैं |यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण सर्वत्र पूज्य हैं | वानरयोनि में उत्पन्न श्रीरामभक्त हनूमान् सबके स्तुत्य हैं | इन सबके पीछे कर्म ही मुख्य है | वेद में देवताओं का भी निर्धारण कर्म के आधार पर ही किया गया है | इसलिये वेद कहता है कि- **यो यदिच्छति तस्य तत्** अर्थात् यज्ञ एक श्रेष्ठ कर्म है **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म** उसका आचरण करनेवाला व्यक्ति जिस कामना से कर्म करता है उसे वह फल प्राप्त होता है | और कर्म में सभी मनुष्यों का अधिकार है | महर्षि कात्यायन ने अपने श्रौत सूत्र में लिखा है- **मनुष्याणामेवारम्भसामर्थ्यात् |** अर्थात् यज्ञानुष्ठान का आचरण करने में मनुष्य सक्षम है इसलिये उसे यज्ञ करने का अधिकार है | मनुष्यों में **अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम्** जो अङ्गहीन है, वेदाध्ययन से वञ्चित है, नपुंसक है, तथा अपवित्र है वह वर्जित है | क्योंकि पङ्गु विष्णुक्रमण, खञ्ज आहुति, बधिर श्रवण, अन्ध दर्शन में अक्षम होगा और यज्ञ कर्म में यह सब कर्म आवश्यक है | वेदाध्ययन के बिना वैदिक कर्म का संपादन अचिन्त्य है | **जातपुत्रः कृष्णकेशः अग्निमादधीत**इस सिद्धान्त के अनुसार अग्न्याधान का अधिकारी उसी को माना गया है जो पुत्रवान् है तथा युवा है | नपुंसक का पुत्रवान् होना संभव नहीं | अपवित्र तथा असंस्कृत मनुष्य पवित्रतम कर्म को करने में समर्थ नहीं होगा |

इस प्रकार वैदिक शब्दों का जो विशाल अर्थ है उसे सामान्य बुद्धि से जान पाना अत्यन्त कठिन है | सही अर्थों में वेद के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता है, जो अबतक नहीं हो पाया है | वेदमन्त्रों का स्वाध्याय करने से अनेकविध पुण्य की प्राप्ति होती है | पुण्योदय होने से भाग्योदय होता है, भाग्योदय से समस्त सकारात्मक बुद्धियों का आविर्भाव एवं विकास संभव होता है | उत्तम बुद्धि हो तो विचार अच्छा बनता है, अच्छे विचार से अच्छी धारणा उत्पन्न होती है तथा अच्छी धारणा से किये गये कार्य से भवबन्धन से मुक्ति एवं प्रभुपद में भक्ति होती है, इन दोनों के बिना परमपद की प्राप्ति संभव ही नहीं | यदि परमपद नहीं तो मनुष्य योनि में जन्म व्यर्थ माना जाता है | क्योंकि **मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्यः** यह मनुष्य का लक्षण किया गया है | **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च |** यह श्रीभगवान् ने स्पष्ट कहा है अतः इस संसार का त्याग एकदिन सबको करना ही पडता है | अतः वेदाध्ययन सब प्राणी को अवश्य करना चाहिये | ताकि सब अच्छा बने, सब उत्तमोत्तम गति को प्राप्त करे, जबतक इस धरती पर रहे सब मिलजुल कर रहे, यही वेद का उपदेश है | यथा-

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः |
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ||[4]
मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् | मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे |
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ||[5]
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् |
देवा भागं यथा पूर्व्वे संजानाना उपासते ||
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् |
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ||
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः |
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ||[6]
जयतु संस्कृतम्| जयतु भारतम् | जयन्तु वेदाः|

---

[4]अथर्ववेद- १९/१५/६
[5]शु०य०सं०-३६/
[6]ऋ० सं०-१०/१९१/२-४